॥ श्रीहरिः ॥

440▲

सच्चा गुरु कौन ?

स्वामी रामसुखदास

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

सच्चा गुरु कौन?

ग्रन्थस्य कृष्णस्य कृपा सतां च
सर्वत्र सर्वेषु च विद्यमाना।
यावन्न ताञ्छ्रद्दधते मनुष्य-
स्तावन्न साक्षात्कुरुते स्वबोधम्॥

अर्जुन हरदम भगवान्‌के साथ ही रहते थे; भगवान्‌के साथ ही खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते थे; परंतु भगवान्‌ने उनको गीताका उपदेश तभी दिया, जब उनके भीतर अपने श्रेयकी, कल्याणकी, उद्धारकी इच्छा जाग्रत् हो गयी—'**यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे**' (२।७)। ऐसी इच्छा जाग्रत् होनेके बाद वे अपनेको भगवान्‌का शिष्य मानते हैं और भगवान्‌के शरण होकर शिक्षा देनेके लिये प्रार्थना करते

हैं—'**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्**' (२।७)। इस प्रकार कल्याणकी इच्छा जाग्रत् होनेके बाद अर्जुनने अपनेको भगवान्‌का शिष्य मानकर शिक्षा देनेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना की है, न कि गुरु-शिष्य-परम्पराकी रीतिसे भगवान्‌को गुरु माना है। भगवान्‌ने भी शास्त्रपद्धतिके अनुसार अर्जुनको शिष्य बनानेके बाद, गुरु-मन्त्र देनेके बाद, सिरपर हाथ रखनेके बाद उपदेश दिया हो—ऐसी बात नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि पारमार्थिक उन्नतिमें गुरु-शिष्यका सम्बन्ध जोड़ना आवश्यक नहीं है, प्रत्युत अपनी तीव्र जिज्ञासा, अपने कल्याणकी तीव्र लालसाका होना ही अत्यन्त आवश्यक है। अपने उद्धारकी जोरदार लगन होनेसे साधकको भगवत्कृपासे, संत-महात्माओंके वचनोंसे, शास्त्रोंसे, ग्रन्थोंसे, किसी घटना-परिस्थितिसे, किसी वायुमण्डलसे अपने-आप पारमार्थिक उन्नतिकी

बातें, साधन-सामग्री मिल जाती है और वह उसे ग्रहण कर लेता है।

गीता बाह्य विधियोंको, बाह्य परिवर्तनको उतना आदर नहीं देती, जितना आदर भीतरके भावोंको, विवेकको, बोधको, जिज्ञासाको, त्यागको देती है। यदि गीता बाह्य विधियोंको, परिवर्तनको, गुरु-शिष्यके सम्बन्धको ही आदर देती तो वह सब सम्प्रदायोंके लिये उपयोगी तथा आदरणीय नहीं होती अर्थात् गीता जिस सम्प्रदायकी विधियोंका वर्णन करती, वह उसी सम्प्रदायकी मानी जाती। फिर गीता प्रत्येक सम्प्रदायके लिये उपयोगी नहीं होती और उसके पठन-पाठन, मनन-चिन्तन आदिमें सब सम्प्रदायवालोंकी रुचि भी नहीं होती। परंतु गीताका उपदेश सार्वभौम है। वह किसी विशेष सम्प्रदाय या व्यक्तिके लिये नहीं है, प्रत्युत मानवमात्रके लिये है।

गीताने ज्ञानके प्रकरणमें '**प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया**' (४।३४) और '**आचार्योपासनम्**' (१३।७) पदोंसे आचार्यकी सेवा, उपासनाकी बात कही है। उसका तात्पर्य यही है कि ज्ञानमार्गी साधकमें 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा अभिमान रहनेकी ज्यादा सम्भावना रहती है। अतः साधकको चेतानेके लिये तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त आचार्य या गुरुकी अधिक आवश्यकता रहती है। परंतु वह आवश्यकता भी तभी रहती है, जब साधकमें तीव्र जिज्ञासाकी कमी हो अथवा उसकी ऐसी भावना हो कि गुरुजी उपदेश देंगे, तभी ज्ञान होगा। तीव्र जिज्ञासा होनेपर साधक तत्त्वका अनुभव किये बिना किसी भी अवस्थामें संतोष नहीं कर सकता, किसी भी सम्प्रदायमें अटक नहीं सकता और किसी भी विशेषताको लेकर अपनेमें अभिमान नहीं ला सकता।

ऐसे साधककी जिज्ञासा-पूर्ति भगवत्कृपासे हो जाती है।

गुरु-शिष्यके सम्बन्धसे ही ज्ञान होता है—ऐसी बात देखनेमें नहीं आती। कारण कि जिन लोगोंने गुरु बना लिया है, गुरु-शिष्यका सम्बन्ध स्वीकार कर लिया है; उन सबको ज्ञान हो गया हो—ऐसा देखनेमें नहीं आता। परंतु तीव्र जिज्ञासा होनेपर ज्ञान हो जाता है—ऐसा देखनेमें, सुननेमें आता है। तीव्र जिज्ञासुके लिये गुरु-शिष्यका सम्बन्ध स्वीकार करना आवश्यक नहीं है। तात्पर्य है कि जबतक स्वयंकी तीव्र जिज्ञासा नहीं होती, तबतक गुरु-शिष्यका सम्बन्ध स्वीकार करनेपर भी ज्ञान नहीं होता और तीव्र जिज्ञासा होनेपर साधक गुरु-शिष्यके सम्बन्धके बिना ही किसीसे भी ज्ञान ले लेता है। तीव्र जिज्ञासावाले साधकको भगवान् स्वप्नमें भी

शुकदेव आदि (जो पहले हो गये हैं) सन्तोंसे मन्त्र दिला देते हैं।

शिष्य बननेपर गुरुके उपदेशसे ज्ञान हो ही जायगा—यह नियम नहीं है। कारण कि उपदेश मिलनेपर भी अगर स्वयंकी जिज्ञासा, लगन नहीं होगी तो शिष्य उस उपदेशको धारण नहीं कर सकेगा। परंतु तीव्र जिज्ञासा, श्रद्धा-विश्वास होनेपर मनुष्य बिना किसी सम्बन्धके ही उपदेशको धारण कर लेता है—'**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्**' (४। ३९)। तात्पर्य है कि ज्ञान स्वयंकी जिज्ञासा, लगनसे ही होता है, गुरु बनानेमात्रसे नहीं।

अगर किसीको असली गुरु मिल भी जाय, तो भी वह स्वयं उनको गुरु, महात्मा मानेगा, स्वयं उनपर श्रद्धा-विश्वास करेगा, तभी उससे लाभ होगा। अगर वह स्वयं श्रद्धा-विश्वास न करे तो साक्षात् भगवान्‌के

मिलनेपर भी उसका कल्याण नहीं होगा। दुर्योधनको भगवान्‌ने उपदेश दिया और पाण्डवोंसे संधि करनेके लिये बहुत समझाया, फिर भी उसपर कोई असर नहीं पड़ा। उसके माने बिना भगवान् भी कुछ नहीं कर सके। तात्पर्य है कि खुदके मानने, स्वीकार करनेसे ही कल्याण होता है। अतः गीता अपने-आपसे ही अपने-आपका उद्धार करनेकी प्रेरणा करती है—‘**उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानम्**’ (६।५)।

ज्ञानमार्गमें तो गीताने आचार्य आदिकी उपासना बतायी है, पर कर्मयोग और भक्तिमार्गमें गुरु आदिकी आवश्यकता नहीं बतायी। कारण कि जब किसी घटना, परिस्थिति आदिसे ऐसी भावना जाग्रत् हो जाती है कि ‘स्वार्थभावसे कर्म करनेपर अभावकी पूर्ति नहीं होती; स्वार्थभाव रखना पशुता है, मानवता नहीं है’, तब मनुष्य स्वार्थभावका, कामनाका त्याग करके सेवा-परायण हो जाता

है। सेवा-परायण होनेसे उस कर्मयोगीको अपने-आप तत्त्वज्ञान हो जाता है—'**तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति**' (४। ३८)।

कोई एक विलक्षण शक्ति है, जिससे सम्पूर्ण संसारका संचालन हो रहा है। उस शक्तिपर जब मनुष्यका विश्वास हो जाता है, तब वह भगवान्‌की तरफ चल पड़ता है। भगवान्‌में लगे हुए ऐसे भक्तके अज्ञान-अन्धकारका नाश भगवान् स्वयं कर देते हैं (१०। ११); और भगवान् स्वयं उसका मृत्यु-संसार-सागरसे उद्धार करनेवाले बन जाते हैं (१२। ७)।

भगवान्‌की यह एक विलक्षण उदारता, दयालुता है कि जो उनको नहीं मानता, उनका खण्डन करता है अर्थात् नास्तिक है, उसके भीतर भी यदि तत्त्वको, अपने स्वरूपको जाननेकी तीव्र जिज्ञासा हो जाय तो उसको भी भगवत्कृपासे ज्ञान मिल जाता है।

जिससे प्रकाश मिले, ज्ञान मिले, सही मार्ग दीख जाय, अपना कर्तव्य दीख जाय, अपना ध्येय दीख जाय, वह गुरु-तत्त्व है। वह गुरु-तत्त्व सबके भीतर विराजमान है। वह गुरु-तत्त्व जिस व्यक्ति, शास्त्र आदिसे प्रकट हो जाय, उसीको अपना गुरु मानना चाहिये।

वास्तवमें भगवान् ही सबके गुरु हैं; क्योंकि संसारमें जिस-किसीको ज्ञान, प्रकाश मिलता है, वह भगवान्‌से ही मिलता है। वह ज्ञान जहाँ-जहाँसे, जिस-जिससे प्रकट होता है अर्थात् जिस व्यक्ति, शास्त्र आदिसे प्रकट होता है, वह गुरु कहलाता है; परन्तु मूलमें भगवान् ही सबके गुरु हैं। भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि 'मैं ही सब प्रकारसे देवताओं और महर्षियोंका आदि अर्थात् उनका उत्पादक, संरक्षक, शिक्षक हूँ'—'**अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः**' (१०।२)। अर्जुनने भी

विराट्‌रूप भगवान्‌की स्तुति करते हुए कहा है कि 'भगवन्! आप ही सबके गुरु हैं'—'**गरीयसे**' (११।३७); '**गुरुर्गरीयान्**' (११।४३)। अतः साधकको गुरुकी खोज करनेकी आवश्यकता नहीं है। उसे तो '**कृष्णं वन्दे जगद्‌गुरुम्**' के अनुसार भगवान् श्रीकृष्णको ही गुरु और उनकी वाणी गीताको उनका मन्त्र, उपदेश मानकर उनके आज्ञानुसार साधनमें लग जाना चाहिये। यदि साधकको लौकिक दृष्टिसे गुरुकी आवश्यकता पड़ेगी तो वे जगद्‌गुरु अपने-आप गुरुसे मिला देंगे; क्योंकि वे भक्तोंका योगक्षेम वहन करनेवाले हैं—'**योगक्षेमं वहाम्यहम्**' (९।२२)।

ज्ञातव्य

असली गुरु वह होता है, जो दूसरेको अपना शिष्य नहीं बनाता, प्रत्युत गुरु ही

बनाता है अर्थात् तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त बना देता है, दुनियाका उद्धार करनेवाला बना देता है। ऐसा गुरु गुरुओंकी टकसाल, खान होता है।

वास्तवमें जो महापुरुष (गुरु) होते हैं, वे शिष्य नहीं बनाते। उनके भीतर यह भाव कभी रहता ही नहीं कि कोई हमारा शिष्य बने तो हम बात बतायें। हाँ, उस महापुरुषसे जिनको ज्ञान मिला है, वे उसको अपना गुरु मान लेते हैं। कोई माने, चाहे न माने, जिससे जितना ज्ञान मिला है, उस विषयमें वह गुरु हो ही गया। जिनसे हमें शिक्षा मिलती है, लाभ होता है, जीवनका सही रास्ता मिलता है, ऐसे माता-पिता, शिक्षक, आचार्य आदि भी 'गुरु' शब्दके अन्तर्गत आ जाते हैं।

मनुष्य किसीको गुरु बनाकर कहता है कि 'मैं सगुरा हो गया हूँ अर्थात् मैंने गुरु धारण कर लिया, मैं निगुरा नहीं रहा' और

ऐसा मानकर वह सन्तोष कर लेता है तो उसकी उन्नतिमें बाधा लग जाती है। कारण कि वह और किसीको अपना गुरु मानेगा नहीं, दूसरोंका सत्संग करेगा नहीं, दूसरेका व्याख्यान, विवेचन सुनेगा नहीं तो उसके कल्याणमें बड़ी बाधा लग जायगी। वास्तवमें जो अपना कल्याण चाहते हैं, वे किसीको गुरु बनाकर किसी जगह अटकते नहीं, प्रत्युत अपने कल्याणके लिये जिज्ञासु बने ही रहते हैं। जबतक बोध न हो, तबतक वे कभी सन्तोष करते ही नहीं। इतना ही नहीं, बोध हो जानेपर भी वे सन्तोष करते नहीं, प्रत्युत सन्तोष हो जाता है। यह उनकी लाचारी है!

पुराने कर्मोंसे, प्रारब्धसे जो फल मिले, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति आये, उसमें तो सन्तोष करना चाहिये, पर आगे नया उद्योग (पुरुषार्थ) करनेमें, परमात्माकी प्राप्ति करनेमें

कभी सन्तोष नहीं करना चाहिये। अतः जबतक बोध न हो जाय, तबतक सच्चे जिज्ञासुको कहीं भी अटकना नहीं चाहिये, रुकना नहीं चाहिये। यदि किसी महापुरुषके संगमें अथवा किसी सम्प्रदायमें रहनेसे बोध न हो तो उस संगको, सम्प्रदायको बदलनेमें कोई दोष नहीं है। सन्तोंने ऐसा किया है। यदि जिज्ञासा जोरदार हो और उस संगको अथवा सम्प्रदायको बदलना न चाहते हों तो भगवान् जबर्दस्ती उसे बदल देते हैं। बदलनेपर सब ठीक हो जाता है।

प्रश्न—विद्यागुरु, शिक्षागुरु और सद्गुरुमें क्या अन्तर है?

उत्तर—जिससे शिक्षा लेते हैं, विद्या पढ़ते हैं, वह 'विद्यागुरु' है। जिससे यज्ञोपवीत धारण करते हैं, कण्ठी लेते हैं, दीक्षा लेते हैं, वह 'दीक्षागुरु' है। जिससे सत्य-तत्त्वका बोध

(ज्ञान) होता है, वह 'सद्‌गुरु' है। सद्‌गुरु किसी भी वर्ण और आश्रमका हो सकता है। महाभारतमें कहा गया है—

प्राप्य ज्ञानं ब्राह्मणात् क्षत्रियाद् वा
वैश्याच्छूद्रादपि नीचादभीक्ष्णम्।
श्रद्धातव्यं श्रद्दधानेन नित्यं
न श्रद्धिनं जन्ममृत्यू विशेताम्॥

(शान्ति० ३१८। ८८)

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा नीच वर्णमें उत्पन्न हुए पुरुषसे भी यदि ज्ञान मिलता हो तो उसे प्राप्त करके श्रद्धालु मनुष्यको सदा उसपर श्रद्धा रखनी चाहिये। जिसके भीतर श्रद्धा है, उस मनुष्यमें जन्म-मृत्युका प्रवेश नहीं हो सकता।'

प्रश्न—गुरुकी पहचान क्या है?

उत्तर—गुरुकी पहचान शिष्य नहीं कर सकता। जो बड़ा होता है, वही छोटेकी पहचान कर

सकता है। छोटा बड़ेकी पहचान क्या करे! फिर भी जिसके संगसे अपनेमें दैवी-सम्पत्ति आये, आस्तिकभाव बढ़े, साधन बढ़े, अपने आचरण सुधरें, वह हमारे लिये गुरु है।

प्रश्न—गुरु शरीरका नहीं, तत्त्वका नाम है—इसका क्या तात्पर्य है?

उत्तर—गुरुके द्वारा जब शिष्यको प्रकाश मिलता है, ज्ञान मिलता है, तभी वह 'गुरु' कहलाता है। अब उसको गुरु मानना, उसका आदर, पूजन करना तो शिष्यका काम है, पर वास्तवमें गुरु तत्त्वज्ञान ही हुआ; क्योंकि शिष्यको तत्त्वज्ञान होनेसे ही उसकी 'गुरु' संज्ञा सिद्ध होती है। इसलिये भागवतमें कहा गया है कि गुरुमें मनुष्यबुद्धि और मनुष्यमें गुरुबुद्धि करना अपराध है। सन्त कहते हैं—

जो तू चेला देह को, देह खेह की खान।
जो तू चेला सबद को, सबद ब्रह्मकर मान॥

अर्थात् शब्दसे ही ज्ञान होता है और गुरु शब्दके द्वारा ही तत्त्वज्ञान कराता है। अतः गुरु परमात्मतत्त्व ही हुआ।

प्रश्न—गुरुके बिना गति नहीं होती, ज्ञान नहीं होता—यह बात कहाँतक ठीक है?

उत्तर—यह बात एकदम ठीक है, सच्ची है; परन्तु केवल गुरु बनानेसे अथवा गुरु बननेसे कल्याण, मुक्ति हो जाय—यह बात ठीक जँचती नहीं। यदि गुरुके भीतर यह भाव रहता है कि 'मेरे बहुत-से शिष्य बन जायँ, मेरा एक सम्प्रदाय (टोली) बन जाय, मैं एक बड़ा आदमी बन जाऊँ' आदि और शिष्यका भी यह भाव रहता है कि 'एक चद्दर, एक नारियल और एक रुपया देनेसे मेरा गुरु बन जायगा, गुरु मेरे सब पाप हर लेगा' आदि, तो ऐसे गुरु-शिष्यके सम्बन्धमात्रसे कल्याण नहीं होता। कारण कि जैसे सांसारिक माता-पिता,

भाई–भौजाई, स्त्री–पुत्रका सम्बन्ध है, ऐसे ही गुरुका एक और सम्बन्ध हो गया!

जिनके दर्शन, स्पर्श, भाषण और चिन्तनसे हमारे दुर्गुण–दुराचार दूर होते हैं, हमें शान्ति मिलती है, हमारेमें दैवी–सम्पत्ति बिना बुलाये आती है और जिनके वचनोंसे हमारे भीतरकी शंकाएँ दूर हो जाती हैं, शंकाओंका समाधान हो जाता है, भीतरसे परमात्माकी तरफ गति हो जाती है, पारमार्थिक बातें प्रिय लगने लगती हैं, पारमार्थिक मार्ग ठीक–ठीक दीखने लगता है, ऐसे गुरुसे हमारा कल्याण होता है। यदि ऐसा गुरु (सन्त) न मिले तो जिनके संगसे हम साधनमें लगे रहें, हमारी पारमार्थिक रुचि बनी रहे, ऐसे साधकोंसे सम्बन्ध जोड़ना चाहिये। परन्तु उनसे हमारा सम्बन्ध केवल पारमार्थिक होना चाहिये, व्यक्तिगत नहीं। फिर भगवान् ऐसी परिस्थिति, घटना भेजेंगे कि हमें वह सम्बन्ध छोड़कर दूसरी जगह जाना

पड़ेगा और वहाँ हमें अच्छे सन्त मिल जायँगे! वे सन्त चाहे साधुवेशमें हों, चाहे गृहस्थवेशमें हों, उनका संग करनेसे हमें विशेष लाभ होगा। तात्पर्य है कि भगवान् प्रधानाध्यापककी तरह हैं, वे समयपर स्वतः कक्षा बदल देते हैं। अतः हमें भगवान्पर विश्वास करके रुचिपूर्वक साधनमें लग जाना चाहिये।

गीतामें भगवान्ने कहा है कि 'जो मेरा आश्रय लेकर यत्न करते हैं, वे सब कुछ जान जाते हैं' (७। २९)। अतः भगवान्पर विश्वास और भरोसा रखते हुए साधन-सम्बन्धी, भगवत्सम्बन्धी बातें सुननी चाहिये और सत्कर्म, सच्चर्चा, सच्चिन्तन करते हुए तथा सबके साथ सद्भाव रखते हुए साधन करना चाहिये। फिर किसी सन्तसे, किसी शास्त्रसे, किसी घटना आदिसे अचानक परमात्मतत्त्वका बोध जाग्रत् हो जायगा।

यदि गुरु मिल गया और ज्ञान नहीं हुआ तो वास्तवमें असली गुरु मिला ही नहीं। असली गुरु मिल जाय और साधक साधनमें तत्पर हो तो ज्ञान हो ही जायगा। यह हो ही नहीं सकता कि अच्छा साधक हो, असली सन्त मिल जाय और बोध न हो! एक कहावत है—

पारस केरा गुण किसा, पलट्या नहीं लोहा।
कै तो निज पारस नहीं, कै बिच रहा बिछोहा॥

तात्पर्य है कि यदि शिष्य गुरुसे दिल खोलकर सरलतासे मिले, कुछ छिपाकर न रखे तो शिष्यमें वह शक्ति प्रकट हो जाती है, जिस शक्तिसे उसका कल्याण हो जाता है।

गुरु-तत्त्व नित्य होता है और वह कहीं भी किसी घटनासे, किसी परिस्थितिसे, किसी पुस्तकसे, किसी व्यक्ति आदिसे मिल सकता है। अतः गुरुके बिना ज्ञान नहीं होता—यह बात सच्ची है।

प्रश्न—क्या अपने कल्याणके लिये गुरु बनाना आवश्यक है?

उत्तर—कल्याणके लिये गुरुकी आवश्यकता तो है, पर बनाये हुए गुरुसे कल्याण नहीं होता। जिससे कल्याण होता है, उसमें गुरुपना स्वतः आ जाता है। तात्पर्य है कि कल्याणके लिये गुरु बनानेकी जरूरत नहीं है, प्रत्युत जिससे जितने अंशमें ज्ञान हो गया, उतने अंशमें वह हमारा गुरु हो गया, चाहे हम मानें या न मानें, जानें या न जानें।

जिसमें अपने कल्याणकी जोरदार इच्छा, सच्ची लगन हो जाती है, उसको स्वतः बोध हो जाता है; जैसे—किसीका संवाद हो रहा हो तो उसको सुननेमात्रसे बोध हो जाता है अथवा कहीं जा रहे हैं और किसी घरमें कोई बात हो रही है तो उस बातसे बोध हो जाता है अथवा किसी पुस्तकको खोलकर

देखते हैं तो उसमें किसी बातको पढ़नेसे बोध हो जाता है अथवा किसी सन्तका इतिहास पढ़ते-पढ़ते कोई बात मिल जाती है तो उससे बोध हो जाता है, इत्यादि। तात्पर्य है कि बोध होनेमें कोई व्यक्ति कारण नहीं है, प्रत्युत अपनी सच्ची लगन, तीव्र जिज्ञासा ही कारण है।

गुरुको प्राप्त कर लेना मनुष्यके हाथकी बात है ही नहीं। उसके हाथकी बात यही है कि वह अपनी लगन, जिज्ञासा जोरदार कर ले। भगवान्पर भरोसा रखकर तथा निर्भय, निःशोक, निश्चिन्त और निःशंक होकर अपने मार्गपर चलता रहे।

प्रश्न—स्त्रीको गुरु बनाना चाहिये या नहीं?

उत्तर—स्त्रीके लिये पति ही गुरु है। अतः उसको पतिके सिवाय दूसरे किसी पुरुषको गुरु नहीं बनाना चाहिये—'**पतिरेको**

है। गुरु बनानेसे क्या होता है? वे कहते हैं कि हमारे गुरुजी बड़े हैं और वे कहते हैं कि हमारे गुरुजी बड़े हैं, अब गोधा (साँड़) लड़ाओ। बीकानेरमें अपने-अपने मोहल्लेमें एक गोधा तैयार करते हैं, फिर दोनोंको लड़ाते हैं और तमाशा देखते हैं कि दोनोंमें तेज कौन है? अब कल्याण कैसे हो जायगा? विचार ही नहीं करते। कहते हैं कि गुरुके बिना कल्याण नहीं होता, तो जिन्होंने गुरु बना लिया, उनका कल्याण हो गया क्या? वे निहाल हो गये क्या? उनका नहीं हुआ तो हमारा कैसे हो जायगा? कुछ तो अक्ल होनी चाहिये, कुछ तो विचार करना चाहिये। यह नहीं सोचते कि जो गुरु बने हुए हैं, उनकी दुर्दशा क्या है! गुरु बनानेके एजेंट होते हैं। वे दूसरोंको कहते हैं कि तुम हमारे गुरुजीको अपना गुरु बनाओ। कैसी उलटी रीति है। क्या पतिव्रता स्त्री

मातहत नहीं बनाता। जो सबको गुरु बनाता है, वही वास्तवमें सबका गुरु होता है।

शास्त्रोंमें जहाँ गुरुका वर्णन आता है, वहाँ कहा गया है कि गुरुको श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिये। वेदोंको, शास्त्रोंको, पुराणोंको जाननेवाला 'श्रोत्रिय' और ब्रह्मको जाननेवाला 'ब्रह्मनिष्ठ' कहलाता है। जो केवल श्रोत्रिय है, ब्रह्मनिष्ठ नहीं है, वह शास्त्रोंको तो पढ़ा सकता है, पर परमात्मतत्त्वका बोध नहीं करा सकता। जो केवल ब्रह्मनिष्ठ है, श्रोत्रिय नहीं है, वह परमात्मतत्त्वका बोध तो करा सकता है, पर अनेक तरहकी शंकाओंका समाधान करनेमें प्रायः असमर्थ होता है। हाँ, शंकाओंका समाधान न कर सकनेपर भी उसमें कोई कमी नहीं रहती; कोई शंका, सन्देह नहीं रहता। अतः कोई शिष्य तर्क-वितर्क न करके तत्त्वको जानना चाहे तो वह ब्रह्मनिष्ठ उसको परमात्मतत्त्वका बोध करा सकता है।

प्रश्न—शिष्य कौन बन सकता है?

उत्तर—जिसके भीतर आराम आदिकी इच्छा बिलकुल नहीं है, जीनेकी इच्छा भी नहीं है, प्रत्युत जिसके भीतर केवल मुक्तिकी इच्छा है, वही शिष्य बन सकता है। अपनी कामना रखकर कोई भी शिष्य नहीं बन सकता। जो कामनाका गुलाम है, वह किसीका शिष्य बन ही कैसे सकता है?

वास्तवमें गुरु भी मौजूद है, भगवान् भी मौजूद हैं, जिज्ञासा भी मौजूद है, योग्यता भी मौजूद है, पर नाशवान्‌की आसक्तिके कारण उनके प्रकट होनेमें बाधा लग रही है। नाशवान्‌की आसक्तिको मिटाना साधकका काम है; क्योंकि उसीने आसक्ति की है। इसीलिये कहा है कि अपने द्वारा अपना उद्धार करे—'**उद्धरेदात्मनात्मानम्**' (गीता ६। ५)।

प्रश्न—गुरु बनानेकी जो प्रथा है, वह क्या है?

उत्तर—गुरु बनानेकी प्रथा एक साम्प्रदायिक चीज है। जहाँ साम्प्रदायिकता होती है, वहाँ बोध होनेकी गुंजाइश नहीं होती, तत्त्वप्राप्तिकी सम्भावना नहीं होती। कारण कि सम्प्रदायका आग्रह होनेसे बोध नहीं होता और जहाँ बोध होता है, वहाँ किसी सम्प्रदायका आग्रह नहीं रहता।

यदि भीतरमें जोरदार लालसा हो तो भीतरका आग्रह जल जाता है और बोध हो जाता है। परन्तु वह बोध किस तरीकेसे होगा, इसको कोई बता नहीं सकता; क्योंकि भगवान्‌के सिखानेके अनेक तरीके हैं, जिसको भगवान् ही जानते हैं।

प्रश्न—जब साम्प्रदायिकतासे बोध नहीं होता, तो फिर सम्प्रदाय क्यों बने हैं?

उत्तर—जो आदमी लोगोंकी दृष्टिमें बड़े हो गये, जिनको लोगोंने बड़ा मान लिया और

आगे उन लोगोंके अनुयायी भी वैसे ही हुए, उनके सिद्धान्तोंको लेकर सम्प्रदाय चल पड़े।

जो वेदोंको, शास्त्रोंको, भगवान्‌को, भगवान्‌के अवतारोंको मानते हैं, ऐसे कई सम्प्रदाय हैं; परन्तु उन सम्प्रदायोंमें कौन कहाँतक पहुँचा है, इसको कौन जाने? अतः जो मनुष्य अपना उद्धार चाहता है, उसे चाहिये कि वह केवल अपने उद्धारका ही आग्रह रखे, सम्प्रदायका आग्रह न रखे।

कोई सम्प्रदाय वैदिक है, शास्त्रसम्मत है तो यह अच्छी बात है, पर उस सम्प्रदायमें आनेसे कल्याण हो जाय, यह कोई नियम नहीं है, कायदा नहीं है। तात्पर्य है कि कल्याणकी बात व्यक्तिगत है, अपनी लगनके अधीन है, किसी सम्प्रदायके अधीन नहीं है। अतः मनुष्यको किसी सम्प्रदायका आग्रह नहीं रखना चाहिये; क्योंकि कल्याण जोरदार लगन होनेसे ही होता है।

प्रश्न—*'गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूँ पाय। बलिहारी गुरुदेवकी, गोविन्द दियो बताय॥'*—ऐसा कहनेका क्या तात्पर्य है?

उत्तर—गुरुके द्वारा ईश्वरका साक्षात्कार हो जाय, तब तो गुरुकी बलिहारी है; क्योंकि उन्होंने भगवान्‌के दर्शन करा दिये। अगर उन्होंने दर्शन नहीं कराये तो ऐसा कहना एक तरहका धोखा है।

जैसे, पूछा जाय कि 'बाप पहले पैदा होता है या बेटा?' तो प्रायः यही उत्तर दिया जाता है कि पहले बाप पैदा होता है, फिर बेटा। परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो बेटा पैदा होनेसे ही उसकी बाप संज्ञा होती है। अगर बेटा न हो तो उसकी बाप संज्ञा सिद्ध नहीं होती। ऐसे ही शिष्यको बोध, ईश्वर-साक्षात्कार होनेसे ही उसकी गुरु संज्ञा सिद्ध होती है।

प्रश्न—गुरुका पूजन करना, ध्यान करना, उनकी जूठन लेना, चरणरज लेना, चरणामृत लेना कहाँतक उचित है?

उत्तर—ये सब भगवान्‌के प्रति ही करना चाहिये; जैसे—भगवान्‌के ही विग्रहका पूजन करे; भगवान्‌का ही ध्यान करे; भगवान्‌को ही भोग लगाया हुआ प्रसाद ग्रहण करे, जहाँ भगवान्‌ने लीला की है, वहींकी रजका आदर करे; शालग्राम आदिका ही चरणामृत ले, भगवान्‌के चरणोंसे निकली हुई गंगाजीका ही आदर करे। तात्पर्य है कि सबसे महान् एवं पवित्र भगवान् ही हैं। उनके समान कोई है नहीं, हुआ नहीं, होगा नहीं और हो सकता भी नहीं। अतः उनके शरण होकर उनका ही पूजन, ध्यान आदि करना चाहिये।

भगवान्‌का शरीर तो चिन्मय और अविनाशी होता है, पर महात्माका शरीर पांचभौतिक

होनेके कारण जड और विनाशी होता है। भगवान् सर्वव्यापी हैं; अतः वे चित्रमें भी हैं। परन्तु महात्माकी सर्वव्यापकता (शरीरसे अलग) भगवान्‌की सर्वव्यापकताके ही अन्तर्गत होती है। एक भगवान्‌के अन्तर्गत सम्पूर्ण महात्मा हैं; अतः भगवान्‌की पूजा करनेसे सम्पूर्ण महात्माओं-की पूजा हो जाती है। अगर महात्माओंके हाड़-मांसमय शरीरोंकी तथा उनके चित्रोंकी पूजा होने लगे तो इससे भगवान्‌की ही पूजामें बाधा लगेगी, जो महात्माओंके सिद्धान्तसे सर्वथा विरुद्ध है। कारण कि महात्मा संसारमें लोगोंको भगवान्‌की ओर लगानेके लिये आते हैं, अपनी ओर लगानेके लिये नहीं। जो लोगोंको अपनी ओर (अपनी पूजा, ध्यान आदिमें) लगाता है, वह तो पाखण्डी होता है।

वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो शरीर मल-मूत्र पैदा करनेकी एक मशीन ही है।

इसको बढ़िया-से-बढ़िया भोजन खिला दो तो वह मल बनकर निकलेगा और बढ़िया-से-बढ़िया शर्बत पिला दो तो वह मूत्र बनकर निकलेगा! जबतक प्राण हैं, तबतक तो यह शरीर मल-मूत्र पैदा करनेकी मशीन है और प्राण निकल जानेके बाद यह मुर्दा है। वास्तवमें तो यह शरीर प्रतिक्षण ही मर रहा है, मुर्दा बन रहा है। इसमें जो वास्तविक तत्त्व (चेतन जीवात्मा) है, उसका चित्र लिया ही नहीं जा सकता। चित्र उस शरीरका लिया जाता है, जो प्रतिक्षण बदल रहा है, नष्ट हो रहा है। अतः शरीर भी चित्र लेनेके बाद वैसा नहीं रहता, जैसा चित्र लेनेके समय था। इसलिये चित्रकी पूजा असत् (नाशवान्)-की ही पूजा हुई। शरीरके चित्रमें प्राण नहीं रहते, इसलिये शरीरका चित्र मुर्देका भी मुर्दा हुआ!

हम जिस मनुष्यको महात्मा मानते हैं, वह

अपने शरीरसे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद हो जानेसे ही महात्मा है, शरीरसे सम्बन्ध रहनेके कारण नहीं। महात्मा कभी शरीरमें सीमित होता ही नहीं। अतः उनके अविनाशी सिद्धान्तों और वचनोंपर ही श्रद्धा होनी चाहिये, नाशवान् शरीर या नामपर नहीं। नाशवान् शरीर और नाममें तो मोह होता है, श्रद्धा नहीं। अतः भगवान्‌के अविनाशी, दिव्य, अलौकिक विग्रहकी पूजा, ध्यान आदिको छोड़कर नाशवान्, भौतिक शरीरोंकी पूजा, ध्यान आदि करनेसे न केवल अपना जीवन निरर्थक होता है, प्रत्युत अपने साथ महान् धोखा भी होता है।

आजकलके जमानेमें तो गुरुका पूजन, ध्यान आदि करनेमें विशेष सावधान रहना चाहिये; क्योंकि इसमें धोखा होनेकी बहुत सम्भावना है। अपनी पूजा करानेवाले, अपने नामका जप एवं शरीरका ध्यान करानेवाले,

अपनी जूठन, चरणरज, चरणामृत देनेवालेसे जहाँतक बने, दूर रहना चाहिये, बचना चाहिये। कारण कि इसमें ठगे जानेकी सम्भावना है, जैसे—कपटमुनिसे प्रतापभानु, साधुवेशधारी रावणसे सीताजी और कालनेमिसे हनुमान्‌जी ठगे गये थे!

जो साधक हैं, पारमार्थिक मार्गपर चलनेवाले हैं, उनको अपनी पूजा आदि नहीं करवानी चाहिये; क्योंकि इससे तपोबल क्षीण होता है और पारमार्थिक उन्नतिमें बाधा लगती है। अतः साधकोंको इन बातोंसे बचना चाहिये, सावधान रहना चाहिये। साधुओंको तो इन बातोंसे विशेष सावधान रहना चाहिये; क्योंकि जो अपनी पूजा आदि करवाता है, उसका तप, साधन पुष्ट नहीं होता; जैसे अधिक दूध देनेवाली गाय पुष्ट नहीं होती—'**दुग्धा गौरिव सीदति**'।

प्रश्न—कई साधु अपनेको भगवान् कहा करते हैं, क्या यह उचित है?

उत्तर—अपनेको भगवान् कहनेवाले प्रायः पाखण्डी ही होते हैं। वे केवल अपनी पूजा, प्रतिष्ठा, लाभके लिये; अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये ही ऐसा स्वाँग बनाते हैं। भगवान्‌का यह स्वभाव नहीं है कि वे अपनेको भगवान् नामसे प्रसिद्ध करें; अतः जो अपनेको भगवान् कहते हैं, वे भगवान् नहीं हो सकते।

तीन रामायण हैं—वाल्मीकिरामायण, अध्यात्मरामायण और रामचरितमानस। इनमेंसे वाल्मीकिरामायणमें कर्मकी प्रधानता, अध्यात्मरामायणमें ज्ञानकी प्रधानता और रामचरितमानसमें भक्तिकी प्रधानता है। इन तीनों ही रामायणमें रामने अपनेको भगवान् नहीं कहा। हनुमान्‌जीने पूछा—

की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥

(मानस ४। १)

तो रामजीने अपना परिचय दिया—

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए॥

(मानस ४। २। १)

भगवान् श्रीकृष्णने क्षत्रियोंके समुदायमें अपनेको सारथि-रूपसे स्वीकार किया, सूतपनको स्वीकार किया। अतः जो असली भगवान् होते हैं, वे यह अभिमान नहीं करते कि 'मैं भगवान् हूँ' और जो कहते हैं कि 'मैं भगवान् हूँ', वे भगवान् नहीं होते। अगर वे भगवान् होते तो अपनेको भगवान् क्यों कहते? भागवतमें मिथ्यावासुदेवका वर्णन आता है। वह कहता था कि 'असली वासुदेव मैं ही हूँ, कृष्ण तो नकली वासुदेव हैं।' भगवान् कृष्णने युद्धमें उसको मार दिया, पर 'मैं ही असली वासुदेव हूँ'—ऐसा नहीं कहा। तात्पर्य है कि जो

अपनेको भगवान् कहते हैं, वे मिथ्यावासुदेव हैं, पाखण्डी हैं।

प्रश्न—गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हैं (**गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः**)—ऐसा कहनेका क्या तात्पर्य है?

उत्तर—तात्पर्य यह है कि शिष्यका गुरुमें मनुष्यभाव न होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरका भाव होना चाहिये। जैसे, पतिव्रता स्त्रीका पतिमें ईश्वरभाव होता है तो उसका पति सबके लिये ईश्वर थोड़े ही हो जाता है! ऐसे ही शिष्यका अपने गुरुमें ब्रह्मा-विष्णु-महेशका भाव होता है तो वह गुरु सबके लिये ब्रह्मा-विष्णु-महेश थोड़े ही हो जायगा! यह तो शिष्यका अपना भाव है। ऐसा भाव होनेपर शिष्यको उस गुरुसे विशेष लाभ होता है; परन्तु यह भाव भीतरसे होना चाहिये, बनावटी नहीं।

प्रश्न—गुरु और शिष्यका एक-दूसरेके प्रति क्या कर्तव्य है?

उत्तर—गुरुका यही प्रयत्न रहे, यही चिन्ता रहे कि शिष्यका उद्धार कैसे हो! शिष्यका यही भाव रहे कि मेरे द्वारा गुरुकी सेवा बन जाय; मेरी सामर्थ्य रहते हुए उनको किसी प्रकारका कष्ट न हो; मेरे पास जो कुछ है, वह सब उनकी सेवाके लिये ही है; उनके वचनों, भावोंके अनुसार मेरा जीवन बन जाय, फिर मेरे जीवनका वे चाहे जो उपयोग करें।

को वा गुरुर्यो हि हितोपदेष्टा
शिष्यस्तु को यो गुरुभक्त एव।

(प्रश्नोत्तरी ७)

प्रश्न—पहले गुरु बनाकर दीक्षा ले ली, मन्त्र ले लिया, पर अब उस गुरुपर श्रद्धा नहीं रही तो ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये?

उत्तर—जैसे, मकानकी छत फट जाय और उसपर ऊपरसे थोड़ी मिट्टी लगा दें तो वह कितने दिन टिकेगी? वर्षा आयेगी तो वह छत गिर जायगी। ऐसे ही जिस गुरुके प्रति हृदयमें सद्‌भाव नहीं रहा, उसमें दोष दीखने लग गये, उसपर बनावटी श्रद्धा करें तो वह कितने दिन टिकेगी? जबर्दस्ती किया गया गुरुभाव कहाँतक रहेगा! कारण कि उस गुरुके विरुद्ध और कोई बात सुननेमें आ जायगी तो गुरुभाव टिकेगा नहीं। अतः अधिक-से-अधिक वह घरपर आ जाय तो उसका आदर करो, भोजन करा दो, चद्दर दे दो, पर उसकी निन्दा मत करो। उसको भीतरसे गुरु मत मानो। जहाँ आपकी श्रद्धा बैठती हो, उसका संग करो और उसके कहे अनुसार अपना जीवन बनाओ। उसके कहे अनुसार अपना जीवन बनानेसे ही कल्याण

उत्तर—जिससे गुरुके मनकी प्रसन्नता हो और वे अपने हृदयकी बात प्रकट कर सकें, ऐसा विश्वासपात्र बनना ही गुरुकी सेवा है। तत्त्वका सच्चा जिज्ञासु गुरुकी सेवा करता है तो उसको तत्त्वकी प्राप्ति हो जाती है। कैसे होती है—इसको तो भगवान् ही जानें!

अपने-आपको खो देना अर्थात् अपने अहंभावको सर्वथा मिटा देना, अपना सब कुछ समर्पण कर देना, अपना कोई आग्रह न रखना, प्राणोंको भी अपना न समझना—यही गुरुसेवाका तात्पर्य है।

प्रश्न—गुरुकृपा क्या है और वह कैसे प्राप्त होती है?

उत्तर—गुरुके चित्तकी प्रसन्नता ही गुरुकृपा है और वह गुरुके अनुकूल बननेसे प्राप्त होती है। गुरुकृपासे लाभ जरूर होता है। गुरुकृपा कभी निष्फल नहीं होती; क्योंकि

वास्तवमें गुरुरूपसे परमात्मा ही हैं। केवल परमात्मप्राप्तिके उद्देश्यसे ही गुरुकी सेवा, आज्ञापालन किया जाय तो वह वास्तवमें परमात्माकी ही सेवा है; अतः भगवान्‌की कृपासे उद्देश्यकी पूर्ति अवश्य होती है।

प्रश्न—गुरुकृपा और भगवत्कृपामें क्या अन्तर है?

उत्तर—दोनोंमें तत्त्वतः कोई अन्तर नहीं है। लौकिक दृष्टिसे वे दो दीखती हैं, पर वास्तवमें एक ही हैं।

प्रश्न—गुरुकी दीक्षा और शिक्षा क्या है?

उत्तर—जैसा गुरु बताये, वैसा नियम लेना, व्रत लेना 'दीक्षा' है और उन नियमोंका पालन करना, उनके अनुसार अपना जीवन बनाना 'शिक्षा' है। पहले दीक्षा देनेके बाद ही शिक्षा दी जाती थी तो वह शिक्षा फलीभूत होती थी, बढ़िया होती थी। परन्तु आज

दीक्षाके बिना ही शिक्षा दी जाती है, जिससे शिक्षा बढ़िया नहीं होती।

प्रश्न—गुरुदक्षिणा क्या है?

उत्तर—अपने-आपको सर्वथा गुरुके समर्पित कर देना अर्थात् 'मैं' और 'मेरा' न रखना ही गुरुदक्षिणा है। गुरुदक्षिणा देनेके बाद शिष्यको अपनी चिन्ता नहीं होती, प्रत्युत उसकी चिन्ता गुरुको ही होती है।

कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्

जो मोहरहित होता है, वही बालकका भला कर सकता है। मोहवाला भला नहीं कर सकता। वैद्य और डॉक्टर दुनियाका इलाज करते हैं, पर अपनी स्त्री या बालक बीमार हो जाय तो दूसरे वैद्यको बुलाते हैं। आप विचार करें कि ऐसा क्यों होता है? खुद अच्छे डॉक्टर होनेपर भी मोह होनेके कारण अपनी स्त्री या बालकका इलाज नहीं कर सकते। उनका इलाज वही कर सकेगा, जिसमें मोह नहीं है। अतः मोहरहित, पक्षपातरहित, संतोंके द्वारा जितनी अच्छी शिक्षा मिलती है, उतनी औरोंके द्वारा नहीं मिलती। परंतु बड़े दुःखकी बात है कि आजकलके गुरु कहते हैं कि तुम मेरे चेले बन जाओ तो तुमको बढ़िया

बात बतायेंगे! चेला बननेपर मोह हो जायगा, ममता हो जायगी। मोह होनेसे दोनोंका पतन होगा—

गुरु लोभी शिष्य लालची, दोनों खेले दाँव।
दोनों डूबा 'परसराम', बैठ पथरकी नाँव॥

चेला सोचता है कि गुरुजीको एक रुपया भेंट कर देंगे तो हमारा पुण्य हो जायगा, बाबाजी हमारे सब पाप ले लेंगे। उधर बाबाजी सोचते हैं कि एक रुपया मुफ्तमें मिलता है, चेलेको एक कण्ठी दे दो। एक रुपयामें पाँच-सात कण्ठी आती है, अपना तो फायदा ही है। अब वह कण्ठी बाँध लेनेसे क्या कल्याण हो जायगा? लोग कहते हैं कि गुरु बनानेसे कल्याण होता है। गुरु नहीं है तो गुरु बना लो, भाई नहीं है तो धर्मभाई बना लो, बहन नहीं है तो धर्मबहन बना लो। किसी तरह पतन हो जाय—यह उद्योग हो रहा

है। गुरु बनानेसे क्या होता है? वे कहते हैं कि हमारे गुरुजी बड़े हैं और वे कहते हैं कि हमारे गुरुजी बड़े हैं, अब गोधा (साँड़) लड़ाओ। बीकानेरमें अपने-अपने मोहल्लेमें एक गोधा तैयार करते हैं, फिर दोनोंको लड़ाते हैं और तमाशा देखते हैं कि दोनोंमें तेज कौन है? अब कल्याण कैसे हो जायगा? विचार ही नहीं करते। कहते हैं कि गुरुके बिना कल्याण नहीं होता, तो जिन्होंने गुरु बना लिया, उनका कल्याण हो गया क्या? वे निहाल हो गये क्या? उनका नहीं हुआ तो हमारा कैसे हो जायगा? कुछ तो अक्ल होनी चाहिये, कुछ तो विचार करना चाहिये। यह नहीं सोचते कि जो गुरु बने हुए हैं, उनकी दुर्दशा क्या है! गुरु बनानेके एजेंट होते हैं। वे दूसरोंको कहते हैं कि तुम हमारे गुरुजीको अपना गुरु बनाओ। कैसी उलटी रीति है। क्या पतिव्रता स्त्री

दूसरी स्त्रियोंसे कहती है कि 'मैं पतिको ईश्वर मानती हूँ, तुम भी मेरे पतिको ईश्वर मानो, उनकी सेवा करो?' तुम भी मेरे गुरुजीके चेले बन जाओ, हमारी टोलीमें आ जाओ, तो क्या दूसरोंके कल्याणका ठेका ले रखा है?

एक कहानी याद आ गयी। एक संत थे, वे भिक्षाके लिये गये तो उन्होंने देखा कि एक जगह कई वेश्याएँ इकट्ठी हो रही हैं। बाबाजीने पूछा कि क्या बात है? तो बताया कि एक वेश्याने सभी वेश्याओंको भोज दिया है। हलवा, चना, चावल—ये चीजें बनायी हैं। जो चावल बनाये थे, उसका माँड़ एक जगहसे बह रहा था। बाबाजी उससे हाथ धोने लगे। वेश्या ऊपर बैठी थी। उसने देखा तो बोली कि 'बाबाजी! यह क्या कर रहे हो? बाबाजी बोले कि 'करना क्या है, हाथ धोता हूँ।'

वेश्या बोली—'महाराज! अन्नके पानीसे हाथ धोओगे तो हाथ चिपकेंगे, पानीसे हाथ धोओ।' बाबाजी बोले—'यह पानी नहीं है तो क्या है, बता? तेरेको दीखता नहीं है?' वेश्याने कहा कि 'बाबाजी! यह पानी शुद्ध नहीं है। शुद्ध पानीसे हाथ धुलते हैं।' वेश्या पासमें आ गयी थी। बाबाजी बोले—'तो फिर तू वेश्याओंको भोजन करा रही है, वे क्या ज्यादा शुद्ध हैं? क्या वेश्या-भोज करनेसे कल्याण हो जायगा?' वेश्या बोली—'महाराज! मैंने सुना कि दान-पुण्य करनेसे, भोजन करानेसे बड़ा पुण्य होता है, तो मैं साधुओंके पास गयी और उनसे पूछा कि महाराज! कल्याण कैसे होगा?' तो उन्होंने कहा कि 'साधु-संतोंकी सेवा करो, तब कल्याण होगा।' फिर मैं ब्राह्मणोंके पास गयी और उनसे पूछा कि 'कल्याण कैसे होगा?' तो उन्होंने कहा कि 'जो जन्मसे

ब्राह्मण हैं, उनकी सेवा करो, तब कल्याण होगा।' अब मैं वैष्णवोंके पास गयी तो उन्होंने कहा कि 'वैष्णवोंकी सेवा करो।' शैवोंके पास गयी तो वे बोले कि 'शैवोंकी सेवा करो।' इस प्रकार जहाँ-जहाँ गयी, वहाँ-वहाँ सबने अपनी ही महिमा गायी, तो यह देखकर हमें युक्ति मिल गयी, विद्या मिल गयी कि हम वेश्याओंको ही भोजन करायें तो इसीसे कल्याण हो जायगा। ऐसे ही बतानेवाले और ऐसे ही शिक्षा लेनेवाले। हल्ला मचा दिया कि गुरु बनाओ, तब कल्याण होगा। विचार करो कि जिन्होंने गुरु बनाया, उनमें क्या फर्क पड़ा? जैसे पहले थे, वैसे अब भी हैं। बनावटी गुरुसे काम नहीं चलेगा। आप गुरु बनायेंगे तो बनाया हुआ गुरु क्या कल्याण करेगा?

वास्तवमें गुरु बनाया नहीं जाता। गुरु तो

हो जाता है। जिससे हमें किसी विषयका ज्ञान हुआ तो उस विषयमें वह हमारा गुरु हो गया, चाहे हम उसे गुरु मानें या न मानें, जानें या न जानें। एक संतसे किसीने पूछा कि 'आपका गुरु कौन है?' तो उन्होंने कहा कि 'जो मेरेसे ज्यादा जानता है' और 'चेला कौन है?' 'जो मेरेसे कम जानता है।' कितनी बढ़िया बात बतायी। जो मेरेसे ज्यादा जानता है, वह मेरा गुरु है, चाहे मैं मानूँ या न मानूँ। जो मेरेसे कम जानता है, वह मेरा चेला है, चाहे वह चेला बने या न बने। मैं आपसे एक प्रश्न करता हूँ—पहले बेटा पैदा होता है कि बाप?

श्रोता—बाप!

स्वामीजी—नहीं, पहले बेटा पैदा होता है, पीछे बाप पैदा होता है। बेटा पैदा हुए बिना उसका 'बाप' नाम होता ही नहीं।

जिससे बेटा पैदा हो जाय, वह बाप हो गया और जिससे आपको ज्ञान हो जाय, वह गुरु हो गया, भले ही आप उसको गुरु मत बनाओ। जिससे आपको गुर मिल गया, सिद्धान्त मिल गया और जिसकी शिक्षासे आपकी उन्नति हो गयी, वह आपका गुरु हो गया, चाहे उसको पता हो या न हो। वह बनावटी गुरु नहीं है, असली गुरु है। बनावटी गुरुसे कभी कल्याण नहीं होता। कालनेमिने हनुमान्‌जीसे कहा कि 'मैं गुरु हूँ, स्नान करके आओ, मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा।' हनुमान्‌जी स्नान करनेके लिये गये। वहाँ मकरीने कहा कि 'महाराज! इसको सन्त मत मानना, यह तो राक्षस है।' हनुमान्‌जीने आकर कहा कि 'पहले गुरु-दक्षिणा (भेंट) ले लो, पीछे मेरेको मन्त्र देना' और उसको पूँछमें लपेटकर ऐसा पछाड़ा कि वह प्राणमुक्त हो गया!

कपटी, बनावटी गुरुकी ऐसी पूजा होती है। जैसा देव, वैसी पूजा।

थोड़ा विचार करें, जिसके मनमें चेला बनानेकी इच्छा है, वह गुरु कैसे हुआ! वह तो चेलादास है। जिसको चेलेकी गरज है, वह चेलेका गुलाम हुआ। जिसको रुपयोंकी गरज है, वह रुपयोंका गुलाम हुआ। अगर रुपये देनेसे कोई गुरु बनता है, तो वह हुआ रुपयोंका दास और वे रुपये हमारे पास हैं, तो हम हुए उसके दादागुरु! अब वह हमारा कल्याण कैसे करेगा? परंतु लोग सोचते ही नहीं और कह देते हैं कि अरे! रुपये इनके भेंट कर दो और इनके चेले बन जाओ, ये हमारा कल्याण कर देंगे। माताओंसे कहते हैं कि 'तुम ऐसे-ऐसे कर दो, नहीं तो चिड़िया बनाकर उड़ा देंगे तुम्हारेको!' जय महाराज! चिड़िया बनाकर उड़ा दोगे, तभी हम आपको

मानेंगे, नहीं तो आपको कुछ न देंगे। हमारा तो फायदा ही है, चलना-फिरना नहीं पड़ेगा, उड़कर चले जायँगे! वे आशीर्वाद देते हैं—'तेरे दूध-पूतकी खैर—तेरा दूध (जाति) भी ठीक रहे, तेरा पूत भी जीता रहे, तो महाराज! आशीर्वाद आप अपने पास ही रखो। वे कहते हैं कि इतनी भेंट लाओ, इतना रुपया लाओ तो तुम्हारा कल्याण कर देंगे, ऐसी विद्या बता देंगे, जिससे लोहेका सोना बन जाय। बाबाजी! ऐसी विद्या यदि तुम्हारे पास है तो हमारेसे रुपया क्यों माँगते हो? रुपयेकी चाहना क्यों रखते हो? वे कहते हैं कि हमारे पास रुपये कम हैं, इसलिये माँगते हैं। महाराज! अगर हमारे पास रुपये ज्यादा हैं तो हम तुम्हारेसे बड़े हुए, फिर तुम्हारे गुलाम हम क्यों बनेंगे? जो रुपयोंसे खरीदे जायँ, वे गुरु नहीं होते।

वास्तवमें गुरुको चेलेकी गरज नहीं होती,

चेलेको ही गुरुकी गरज होती है। भाइयोंको वहम पड़ा हुआ है कि गुरु बनानेमें कल्याण हो जायगा। बनावटी गुरु कल्याण नहीं करता। मेरेसे कोई पूछता है तो मैं कहता हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णको गुरु मान लो—'**कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्।**' भगवान् जगत्के गुरु हैं और जगत्में आप हो ही। उनका मन्त्र है—'भगवद्गीता।' भगवद्गीताका मनन करो, कल्याण हो जायगा। संदेह हो तो करके देख लो कि कल्याण होता है या नहीं होता। भगवान्के रहते हुए आप गुरुके लिये क्यों भटकते हो?

माताएँ डरती हैं कि हम किन-किनका उपदेश मानें! हम हनुमान्जीकी पूजा करें तो कृष्ण नाराज हो जायँगे, कृष्णकी पूजा करें तो रामजी नाराज हो जायँगे, रामजी आदिको मानें तो देवी नाराज हो जायँगी, देवीकी पूजा

करें तो हनुमान्‌जी नाराज हो जायँगे! अब हम क्या करें? ऐसे प्रश्न मेरे पास आते हैं। कितनी भोली-भाली, सीधी-सादी माताएँ हैं! कोई ठग मिल जाय तो इन बेचारियोंको डुबा दे! मैंने कहा कि तुम यह डर बिलकुल निकाल दो। अब पतिव्रता कहे कि मैं पतिकी सेवा करूँगी तो दूसरे पुरुष नाराज हो जायँगे, तो बड़ी मुश्किल हो जायगी। सबकी सेवा कहाँतक होगी! तुम किसी एकके भक्त बन जाओ तो सब राजी हो जायँगे। तुम कृष्ण-भगवान्‌के भक्त बन जाओ तो देवी, सूर्य, गणेश, शिव आदि सब राजी हो जायँगे। पतिव्रतासे कौन नाराज होता है? तुम पतिकी सेवा करती हो, हमारी सेवा तो करती ही नहीं, हम नाराज हो जायँगे—ऐसा होता है क्या? पतिव्रतासे कोई नाराज नहीं होता। अगर नाराज हो भी जाय तो हमारी तरफसे

भले ही सब नाराज हो जायँ! एक बार मेरेको एक भाईने कहा कि महाराज! आप मेरेसे नाराज हो गये क्या? मैंने कहा कि अगर नाराज होनेसे भगवान् मिल जायँ, तो तेरेसे नाराज हो जायँ! भगवान् तो मिलते नहीं नाराज होनेसे, तो फिर हम नाराज क्यों होंगे! नाराज होनेसे मेरेको क्या लाभ होगा? बेचारे भाई डर जाते हैं कि एक देवताकी पूजा करनेसे दूसरे देवता नाराज हो जायँगे। बिलकुल नाराज नहीं होंगे। आप अनन्यभावसे किसी एक देवताकी उपासनामें तत्परतासे लग जाओ तो दूसरे सब देवता राजी हो जायँगे।

श्रोता—आजकल दुनियामें ढूँढ़नेपर भी गुरु नहीं मिलता। मिलता है तो ठग मिलता है। हम गुरु ढूँढ़नेके लिये कई तीर्थोंमें गये, पर कोई मिला ही नहीं। आप कहते हैं कि जगद्गुरु कृष्णको अपना गुरु मान लो। अगर

आप यह घोषणा कर दें कि भाई! आपलोग कृष्णको ही गुरु मानो तो यह वहम ही मिट जाय...... !

स्वामीजी—वास्तवमें गुरुको ढूँढ़ना नहीं पड़ता। फल पककर तैयार होता है तो तोता खुद उसको ढूँढ़ लेता है। ऐसे ही अच्छे गुरु खुद चेलेको ढूँढ़ते हैं, चेलेको ढूँढ़ना नहीं पड़ता। जैसे ही आप कल्याणके लिये तैयार हुए, गुरु फट आ टपकेगा! फल पककर तैयार होता है तो तोता अपने-आप उसके पास आता है, फल तोतेको नहीं बुलाता। ऐसे ही आप तैयार हो जाओ कि अब मुझे अपना कल्याण करना है तो गुरु अपने-आप आयेगा। बालकका पालन माँ ही कर सकती है, पर माँको बालककी ज्यादा गरज होती है, बालकको माँकी गरज नहीं होती। इतनी देर हो गयी, बालकने दूध नहीं पिया, क्या बात है?—यह

चिन्ता माँको रहती है। ऐसे ही जब मनुष्य असली शिष्य बन जाता है, उसमें अपने उद्धारकी लालसा लग जाती है, तब गुरु अपने-आप उसे ढूँढ़ लेता है।

जो असली गुरु होते हैं, वे दूसरेको चेला नहीं बनाते, प्रत्युत गुरु ही बनाते हैं।* जिसको वे चेला बनाते हैं, वह दुनियाका गुरु हो जाता है। वहाँ ऐसी टकसाल है, जहाँसे गुरु-ही-गुरु निकलते हैं। दूसरेको अपना चेला बनाना तो पशुका काम है। कुत्ता दूसरे कुत्तेको काटता है और जब वह कुत्ता नीचे गिर जाता है तो यह ऊपर हो जाता है और राजी हो जाता है। दूसरेको चेला बनाकर, अपना मातहत बनाकर राजी होना क्या गुरुका लक्षण है? भगवान्‌के दरबारमें अंधेर नहीं है। अगर

* पारसमें अरु संतमें बहुत अंतरौ जान।
वह लोहा कंचन करै वह करै आपु समान॥

आप तैयार हो जाओ तो अच्छे-अच्छे गुरु आपकी गरज करेंगे। बच्चेके बिना माँ वर्षोंतक रह सकती है और रहती आयी है, पर बच्चा माँके बिना नहीं रह सकता। फिर भी बच्चेमें माँकी जितनी गरज होती है, उससे ज्यादा माँमें बच्चेकी गरज होती है। परंतु बच्चा माँके हृदयको समझ ही नहीं सकता। ऐसे ही गुरु चेलेके बिना रह सकता है, पर चेला गुरुके बिना नहीं रह सकता। चेलेके भीतर अपने उद्धारकी जितनी लगन होती है, उससे ज्यादा गुरुमें चेलेके उद्धारकी लगन होती है। परंतु चेला गुरुके हृदयको समझ ही नहीं सकता।

बछड़ेको देखकर गायका हृदय उमड़ता है। बछड़ेका तो एक मुँह होता है, पर गायका दूध चार थनोंसे टपकता है। ऐसे ही आपमें अपना कल्याण करनेकी लगन लगेगी तो

गुरुका हृदय उमड़ पड़ेगा। संत-महात्माओंके मनमें जीवका उद्धार करनेकी जितनी लगन होती है, उतनी खुद जीवमें अपना उद्धार करनेकी नहीं होती।

आपको गुरुको ढूँढ़नेकी क्या जरूरत है? आप असली चेला बन जाओ, आपके भीतर अपने उद्धारकी लालसा लग जाय, तो गुरु खोजते हुए आ जायँगे आपके पासमें। कभी-कभी स्वप्नमें भी गुरु मिल जाते हैं और मन्त्र दे देते हैं। चरणदासजी महाराजको शुकदेवजीने स्वप्नमें आकर दीक्षा दी। शुकदेवजी महाराज हजारों वर्ष पहले हुए और चरणदासजी महाराज अभी हुए, पर शुकदेवजी महाराज गुरु हो गये और चरणदासजी महाराज चेला हो गये। गुरुजनोंके हृदयमें तो मात्र दुनियाके उद्धारकी लालसा होती है। अतः आपको उन्हें ढूँढ़नेकी जरूरत नहीं है।

भाई कहते हैं कि तुम घोषणा कर दो, सबको कह दो, तो माताओ! भाइयो! आप सभीसे मेरा कहना है कि अगर गुरु बनाना हो तो कृष्णको गुरु मान लो। वे सम्पूर्ण जगत्‌के गुरु हैं—'**कृष्णं वन्दे जगद्‌गुरुम्।**' आप जगत्‌से बाहर नहीं हो। गुरुजीका मन्त्र है—'गीता'। गीताजीका पाठ करो, मनन करो। गीताजीको याद करो। उसके अनुसार अपना जीवन बनाओ। उद्धार हो जायगा! जितनी अधिक लगन होगी, उतनी जल्दी उद्धार होगा। जितनी ढिलाई होगी, उतनी देरी लगेगी। उद्धार होगा ही। लाभ ही होगा, नुकसान नहीं होगा। अगर किसी 'ऐरे गैरे नत्थू खैरे' को गुरु बनाओगे तो वह क्या निहाल करेगा! इसलिये आप निःसंकोच होकर भगवान्‌के चरणोंके आश्रित हो जाओ। डरो मत, निधड़क रहो। जो बनावटी गुरु होते हैं, उनके एजेंट ही

कहा करते हैं कि 'तुम इनके चेले बन जाओ।' रावण भिक्षा लेने गया तो उसने सीताजीसे कहा कि जो कार (लकीर) है, उसके भीतर हम नहीं आते—'***नहीं आते कारके भीतर, निराकार जपते हरिहर हर।***' हम निराकारको जपते हैं, आकारके भीतर नहीं आते, लकीरसे बाहर आकर भिक्षा दो। सीताजी बाहर आयीं तो उनको उठाकर चल दिया! ये हैं गुरुजी महाराज! इनसे सावधान रहना। आजसे ही याद कर लो कि '**कृष्णं वन्दे जगद्‌गुरुम्!**'

❑❑❑

गुरु कैसा हो?

जिस गुरु, सन्त-महापुरुषमें ये बातें हों:—

१-जो हमारी दृष्टिमें वास्तविक बोधवान्, तत्त्वज्ञ दीखते हों और जिनके सिवाय और किसीमें वैसी अलौकिकता, विलक्षणता न दीखती हो।

२-जो कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि साधनोंको तत्त्वसे ठीक-ठीक जाननेवाले हों।

३-जिनके संगसे, वचनोंसे हमारे हृदयमें रहनेवाली शंकाएँ बिना पूछे ही स्वतः दूर हो जाती हों।

४-जिनके पासमें रहनेसे प्रसन्नता, शान्तिका अनुभव होता हो।

५-जो हमारे साथ केवल हमारे हितके लिये ही सम्बन्ध रखते हुए दीखते हों।

६-जो हमारेसे किसी भी वस्तुकी किंचिन्मात्र भी आशा न रखते हों।

७-जिनकी सम्पूर्ण चेष्टाएँ केवल साधकोंके हितके लिये ही होती हों।

८-जिनके पासमें रहनेसे लक्ष्यकी तरफ हमारी लगन स्वतः बढ़ती हो।

९-जिनके संग, दर्शन, भाषण, स्मरण आदिसे हमारे दुर्गुण-दुराचार दूर होकर स्वतः सद्गुण-सदाचाररूप दैवी सम्पत्ति आती हो।

❑❑❑